International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

समकालीन नाटककारों से नन्दकिशोर आचार्य के नाटकों की तुलना

डॉ. जिनिथ निर्मला बेक
पोर्टब्लेयर
अंडमान निकोबार द्वीप, भारत

Date of Submission: 14-02-2023 Date of Acceptance: 27-02-2023

प्रस्तावना

नन्दकिशोर आचार्य राजस्थान के उन महत्वपूर्ण नाटककारों में से हैं जिन्होंने अपनी प्रांत की सीमा लांघकर हिन्दी नाट्य जगत में अपनी पहचान बनाई है। नाटककार का जीवन और जगत के साथ नित्य प्रति जीवन का सम्पर्क विचार अैर भावना के घरातल पर अनुकूल माध्यमों से आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है। अपनी बात को कहने के लिए वह एक कथा का स्थूल आवरण स्वीकार करता है। युगीन संवेदनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति ही जीवन्त साहित्य की पहचान है। इस दृष्टि से हिन्दी नाटक निरन्तर युगीन को सहेजती और उसके अनूरूप अपने आपको ढालती रही है। नाटककारों ने कहीं पुराण–इतिहास का आधुनिक संदर्भों में उपयोग करते हुए वस्तु को बिल्कुल नया आयाम दिया। कहीं लोकनाट्यों को नया संस्कार देकर आज के युगबोध को उसके माध्यम से सम्प्रेषित किया, कहीं यथार्थवादी रंगमंच को स्वीकार करते हुए आंतरिक यथार्थ की खोज और कहीं यथार्थ से सीधा साक्षात्कार करके समकालीन जीवन की विसंगतियों को उभारा है। अलग–अलग धरातल पर प्रयोग की दिशा को समकालीन नाटककारों के नाटकों के साथ नन्दकिशोर के अलग–अलग नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट किया जा सकता है। पौराणिक कथाओं के माध्यम से वर्तमान की मीमांसा अनेक आधुनिक नाटकों में प्रस्तुत की गई है। सामान्यतया कथाओं में नवीनता लाने के लिए प्रसंग या पात्र को जोड़ दिया जाता है।

'देहान्तर' नाटक भी नन्दकिशोर आचार्य का ऐसा ही प्रयास है। कथा का आधार पौराणिक है परन्तु ययाति शर्मिष्ठा और नवीन पात्र बिन्दुमती के माध्यम से विभाजित व्यक्तित्व और उसके द्वन्द्वात्मक मनोविज्ञान पर दृष्टि डाली गई है। ययाति देवयानी के साथ तथा शर्मिष्ठा के प्रति अनुरक्त था। ययाति और शर्मिष्ठा दोनों ने गुप्त विवाह किया। शुक्राचार्य को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने ययाति के यौवन के क्षय का शाप दिया। शर्मिष्ठा से उत्पन्न पुरू पिता को यौवन देकर उनकी वृद्धावस्था ग्रहण करता है। यहीं से मनोग्रंथियों की सृष्टि होती है। शर्मिष्ठा को ययति में पुरू का पौरूष दिखाई देता है और वह विरक्त रहने लगती है, तब पुरू अपनी माँ शर्मिष्ठा द्वारा उसके पिता से अलग रहने का कारण जानना चाहता है। शर्मिष्ठा पुरू से कहती है – "कैसे? यह प्रश्न तुम्हारी मर्यादा के बाहर है। मैं इसका उत्तर देने को बाध्य नहीं हूँ।"[1] यद्यापि यह पुत्र की मर्यादा से बाहर है फिर भी वह पति और पुत्र दोनों के सुख को बनाए रखना चाहती है। अन्त में बिन्दुमती पिता–पुत्र और माता के संबंधो को द्वन्द्वमुक्त कराने के उद्देश्य से ययाति को भोग–लिप्सा की सत्यता से अवगत कराती है तथा देवलोक चली जाती है।

'उर्वशी' भी रामधारी सिंह का ऐसा ही नाटक है, जहाँ कथा का आधार पौराणिक है, परंतु पुरूरवा और उर्वशी के माध्यम से विभाजित व्यक्तित्व और उसके द्वन्द्वात्मक मनोविज्ञान दृष्टिपात किया गया है। "उर्वशी देवलोक से आई हुई नारी है वह सहज निश्चित भाव से पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है"[2] पुरूरवा और उर्वशी एक दूसरे से प्रेम करते हैं। 'इन्द्र' में वे 'धरती' नाम का नाटक खेलते हैं। प्रभाववश उर्वशी से एक दुर्घटना हो जाती है और कुपित होकर इन्द्र उसे धरती पर पुरूरवा के पास भेज देते हैं। दोनों का विवाह होता है फिर 'आयु' का जन्म भी और यहीं से नाटकीय संघर्ष की शुरूआत होती है। पुरूरबा से छिपाकर उर्वशी 'आयु' को च्यवन के आश्रम में पालती है। 'आयु' द्वारा पिता के बारें में पूछे गए प्रश्नों के अंबार और पुरूरवा द्वारा उसके आचरण की पवित्रता पर संदेह उर्वशी के हृदय को मथ डालता है। फिर भी वह इन्द्र के शाप को व्यर्थ करने की चेष्टा करती हुई पति और पुत्र दोनों के सुख को बनाए रखना चाहती है। इन्द्र के शाप से उर्वशी, पुरूरवा और आयु तीनों की आत्माएँ संतृप्त हो उठती है। अन्त में उर्वशी अपने स्वार्थ को तिलांजलि देकर पिता–पुत्र को सन्ताप मुक्त करने का निर्णय लेती है। पिता–पुत्र के मिलन के साथ वह देवलोक वापस चली जाती है।

कथ्य की इस योजना से व्यंजित होता है कि इन नाटकों में पति की आकांक्षा और पुत्र के वात्सल्य के द्वन्द्व को झेलती हुई नारी की नितान्त मनोवैज्ञानिक धरातल पर अवतारणा हुई है, जिसके साथ आधुनिक मनुष्य

International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

का विभाजित व्यक्तित्व भी रूपायित हुआ है। नाटक में आधुनिकता का स्पर्श वहाँ है, जहाँ नाटककार परम्परागत चरित्र को नए जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में देखता है।

'देहान्तर' पौराणिक कथ्य पर आधारित नाटक है, जिनका कथ्य युग की सीमा को लाँघकर शाश्वत भाव को भी व्यंजित करता है। प्रश्न यहाँ स्त्री–पुरूष के शाश्वत संबंधों की खोज का भी है। पुरूष के भीतर का यह पुरूष और नारी के भीतर की यह नारी ही शाश्वत नर–नारी है। चिरकाल से जन्म–जन्मांतर से वे एक दूसरे को खोजकर पा लेने की कोशिश में लगे हैं, लेकिन 'देहान्तर' में यह खोज दैहिक स्तर पर भोगने के बावजूद भी मानव की शाश्वत असंतुष्टि को व्यंजित करता है। इसके विपरीत डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक **'सगुन पंछी'** के माध्यम से शाश्वत पुरूष और शाश्वत नारी एक दूसरे की खोज में यात्रा करते हुए विभिन्न अनुभव से गुजर कर अंत में पूर्णता पाते हैं। "सगुन पंछी तोता–मैना से आगे चलकर, बल्कि स्त्री पुरूष सम्बन्धों चरित्रों के सागर तट पर पहुँचकर दोनों सगुन पंछी दिखे।"[3]

नन्दकिशोर आचार्य और डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के जीवन–दर्शन तथा स्त्री–पुरूष के शाश्वत संबंधो को देखने की दृष्टि तो देते हैं, लेकिन ये जीवन–दर्शन कहाँ तक पूर्ण और स्वीकार्य है ? यह विचार का विषय हो सकता है। यह विचार करने की आवश्यकता तब और गंभीरता के साथ उभरकर सामने आती है जब इसी स्त्री–पुरूष के शाश्वत संबंधों को एक सर्वथा भिन्न दृष्टि से आँकने की कोशिश हमें सुशील कुमार सिंह के नाटक **'चार यारों की यार'** में दिखाई पड़ती है। इस नाटक में स्त्री–पुरूष संबंध का भी अन्वेषण किया गया है, लकिन यहाँ अन्वेषण का धरातल काम–संबंध है और वह भी विशुद्ध रूप से शारीरिक। स्त्री पुरूष के संबंधो को दैहिक तुष्टि से जोडकर देखा गया है। बिंदिया कहती है – "दोष मैं किसे दूँ, सब भाग्य का खेल है यदि मैं अपने पहले पति को छोड़कर दूसरा ब्याह न रचाती ..... चौंकिए मत कोई नयी बात नहीं कह रही हूँ .....।"[4] बिंदिया शराबखोर पति को इसलिए छोड़ देती है कि बदहवासी में वह उसे बुरी तरह पीटा करता था। शरीर यहाँ भी मुख्य भूमिका निभाता है। नपुंसक पति सीताराम उसे पसंद नहीं आता, तो केवल इसलिए कि उससे दैहिक तुष्टि नहीं होती। बिंदिया और चारो यारों के दैहिक संबंध में भी शरीर मुख्य है। अंत में यह नाटक व्यंजित करता है कि स्त्री–पुरूष संबंधो को केवल दैहिक तुष्टि से जोड़कर देखने की यह स्वाभाविक परिणति है। जहाँ यह संबंध बिखरते या टूटते पाए जायें वहाँ इस बिखराव का कारण या तो भावनात्मक संवाद का अभाव या फिर दैहिक तुष्टि का अभाव ही ठहराया जा सकता है।

यह एक गंभीर समस्या है कि इस संबंध के बीच दरार पड़ती जा रही है। कहीं शरीर के धरातल पर, कहीं मन के धरातल पर स्त्री–पुरूष एक दूसरे के पूरक न होकर अपनी स्वतंत्र अस्मिता की पहचान कायम करने के नाम पर कटते जा रहे हैं। नन्दकिशोर आचार्य, डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल और सुशील कुमार ने समस्या की इस गंभीरता का आभास अपनी अलग–अलग कृतियों में प्रस्तुत किया है। शाश्वत रचनाओं की दृष्टि से उपर्युक्त नाटकों में प्रस्तुति–शैली की विविध संभवनाएँ निहित हैं।

'देहान्तर' वस्तुतः व्यक्तित्व की पूर्णता की एक तालाश है। हर व्यक्ति अपने को पूर्ण बनाने की कोशिश करता रहता है। प्रकृति ने यह पूर्णता स्त्री–पुरूष संबंधों में तय कर रखी है। स्त्री–पुरूष का अपने–अपने अहं का त्याग कर एक दूसरे के प्रति निःस्वार्थ समर्पण दोनों को पूर्ण बनाता है। दर्शन में जिसे 'माया' कहा गया है, वैसी न जाने स्थितियाँ जीवन में विद्यमान है, जो मनोवैज्ञानिक धरातल पर संबंधों में अलगाव उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार स्त्री–पुरूष संबंध पूर्णता वंचित रह जाता है। प्राचीन जीवन–सिद्धान्त ऐसे अवसर प्रदान करते रहे हैं जहाँ व्यक्ति अपनी पूर्णता की तलाश को सार्थकता प्रदान कर सकता था, लेकिन आधुनिक जीवन की विसंगति यह भी है कि अनास्था और विश्वासहीनता के कारण व्यक्ति मानवीय संबंधों की उस गहराई तक नहीं पहुँच पाता, जहाँ हर व्यक्ति अपने को पूर्ण पाता है। मोहन राकेश के नाटकों की तरह जहाँ भी हम चरित्रों के माध्यम से जीवन के अधूरेपन का जानते हैं। मनुष्य सब कुछ एक साथ पा लेना चाहता है। 'देहान्तर' का ययाति भी पूर्णता चाहता है किन्तु सभी सुख भोगने के बाद भी प्रेम और कामेषणा का अंतर नहीं समझ पाता। उसे प्रेम की सत्ता केवल भोग में ही स्वीकार्य है काम तृप्ति में प्रेम की खोज करने वाला ययाति मोक्ष के द्वार तक नहीं जाता और अनुत्तरित प्रश्न के साथ एक असंतुष्ट देहधारी की तरह टूट जाता है। मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' की सावित्री भी पूरापन चाहती है, पर उसे जो भी पुरूष मिलता है वही अधूरा होता है, अंत में जब पुरूषों से विश्वास उठ जाता है तो कहती है –

International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

"सब–के–सब एक से। बिल्कुल एक से है ? आप लोग ! अलग–अलग मुखौटे पर चेहरा ? पर चेहरा सबका एक ही ।"[5] कोई पूर्ण पुरूष उसे प्राप्त नहीं होता और पूर्ण पुरूष की तालाश उसके जीवन को मुर्त अभिव्यक्ति प्रदान करता है। तो 'देहान्तर' देह सुख के बल पर दैहिक संचेतना के अमूर्त लक्षण को मूर्त रूप देने की चेष्टा करता है। गिरीश करनाड की कन्नड़ अनुवादित नाटक **'हयवदन'** में भी पदमिनी एक पूर्ण पुरूष चाहती है जो एक साथ कपिल भी हो और देवदत्त भी, लेकिन 'कपिल' कपिल है और 'देवदत्त' देवदत्त है। "पदमिनी : (दबी आवाज में) सुनो देवदत्त के साथ जाना मेरा धर्म है पर जा तो रही हूँ तुम्हारी देह के संग। इससे तुम्हें संतोष होना चाहिए।"[6] संयोगवश जब कपिल और देवदत्त जब मिल भी जाते है तो पदमिनी के लिए यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि दोनों में अर्थात अपूर्णता तब भी है। एकमात्र सत्य अर्थात मनुष्य अपनी आंतरिक संरचना में ही अपूर्ण है इसलिए पूर्णता की तालाश में भटकना, अपूर्णता को झेलना ही उसकी नियति है। इन नाटकों में मानवीय सहिष्णुता की समझदारी का अभाव मूल कारण ठहराया गया है। इस प्रकार विषय के धरातल पर ये नाटक आधुनिक जन–जीवन की गंभीर समस्या से जुडते हैं और अपने मंचीय अभिव्यक्ति में उसे मूर्तता प्रदान करते हैं। इतिहास और पुराण पर आधारित रचनाएँ जन–साधारण, पाठक और दर्शक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करती है। नाटकों में ऐतिहासिकता पौराणिकता से कहीं तो आकर्षण की सामान्य मनोभूमि पर इतिहासपरक रचना की निर्मिति होती है तो कहीं वह उन संदर्भों के माध्यम से समकालीन–युगीन संदर्भों के अवगुंठन भी खोलती है।

नन्दकिशोर आचार्य का नाटक **'हस्तिनापुर'** महाभारत की घटनाओं के आधार पर नारी त्रासदी को विविध कोणों से देखने परखने की कोशिश करता है, जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक घटनाओं को देखने की वह नयी दृष्टि समकालीन आधुनिक जीवन जगत के किसी जीवंत संदर्भ से जुड़कर उन्हें एक पृथक अर्थवत्ता भी प्रदान करती है। नारी मन को कभी नियोग, कभी रक्तशुद्धि तथा वंश परम्परा के नाम पर प्रताड़ित किया गया है। शुभा जैसी नारी इन बंधनों से मुक्त होकर शोषण के प्रति विद्रोह करना चाहती है। इस प्रकार इस नाटक में नारी की त्रासदी तथा नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व के तलाश को शुभा के चरित्र के माध्यम से नए रूप में उजागर किया गया है। इसी प्रकार नारी त्रासदी से संबंधित उदयशंकर भट्ट का नाटक **'असुर सुन्दरी' (1972)** भी है शूर्पणखा। वह सबसे केवल प्रताडित होती है। रावण उसके पति का वध कर देता है और उसे दण्डकारण्य की स्वामिनी बनाकर भेज दिया जाता है। दण्डकारण्य में वह स्वामिनी होकर भी दासियों जैसा जीवन जीती है। इसी में उसका जीवन कटता है। प्रकृति के स्वछन्द शूर्पणखा इन बंधनों से मुक्त शोषण के प्रति विद्रोह करना चाहती है। प्रचारतंत्र और षडयंत्र द्वारा आखिर सीता को भी वनवास दिलाकर ही छोड़ती है। सीता के वनवास प्रसंग को नाटककार ने एक नयी दृष्टि से और शूर्पणखा के प्रतिशोध से जोड़कर देखा है। यह इस नाटक के घटना की नवीनता है। अवधेश्वर अरूण का नाटक **'जय वैशाली'(1972)** में अम्बपाली अपने ढंग से जीवन जीना चाहती है, लेकिन गणपरिषद के आदेश से उसे वैशाली के नगर वधू बनना पड़ता है। इसे वह नारीत्व का अपमान समझती है और बदले की भावना से प्रेरित होकर वह मगध सम्राट अजातशत्रु के साथ षडयंत्रपूर्ण दुर्लभ संधि कर लेती है और अम्बपाली की सहायता तथा प्रोत्साहन पाकर अंततः अजातशत्रु वैशाली गणतंत्र का नाश करता है।

'हस्तिनापुर' नाटक में शुभा (विदुर की माँ) भी दासी थी। वह अपने अधिकार की बात करती है तथा अंत में पूरे स्त्री पक्ष की पीड़ा सुनाते हुए नारी मुक्ति के प्रश्न खड़े करती है। राजसत्ता और षडयंत्रो के बीच नारी शोषण के सन्दर्भों की द्रष्टा और भोक्ता भी है। वह सम्पूर्ण नारी जाति को परखने का प्रयास करती है। वह स्वयं प्रताड़ित होते हुए भी केवल अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं चाहती, बल्कि सम्पूर्ण नारी जाति की स्वतंत्रता चाहती है। शुभा ने स्वयं को जीवन–प्रक्रिया की गहराइयों में उतारा है, जीवन को स्वयं जीया और भोगा है, तभी जीवन की विवशता और व्यक्तित्व के बीच संघर्ष को वह इतनी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त कर पायी है। **'असुर सुन्दरी'** तथा **'जय वैशाली'** नाटकों में नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए प्रोत्साहन तथा सहायता पाकर विजय प्राप्त कर लेती है, परंतु **'हस्तिनापुर'** नाटक में नारी अकेली संघर्ष करती हुई दिखाई देती है।

उपर्युक्त नाटकों में स्त्री के संघर्ष का ही चित्रण है। **'असुर सुन्दरी'** तथा **'जय वैशाली'** नाटक रामायण काल और बुद्ध काल की घटनाओं पर आधारित है। ये नाटक इतिहास–पुराण काल की भंगिमा और इतिवृत भर ही प्रस्तुत करते हैं। इसके विपरित **'हस्तिनापुर'** महाभारत की घटनाओं पर आधारित है। इस नाटक में इतिहास पुराण की इतिवृत्त का अनुपालन भी है, इतिहास–पुराण की घटना विशेष तथा पात्र की नयी

International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है तथा साथ ही घटनाओं को देखने की वह नयी दृष्टि समकालीन आधुनिक जीवन और जगत संदर्भ से जुडकर एक पृथक अर्थवत्ता भी प्रदान करती है।

सुरेन्द्र वर्मा के नाटक **'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'** की भांति **'हस्तिनापुर'** में भी नियोग की समस्या को उठाना मिथकीय संदर्भ है। यह नियोग आधारित जातक कथा का मिथक आज के मानवीय संदर्भों में सार्थक अर्थवत्ता लिए हुए प्रश्न खड़ा करता है। दोनों नाटकों में नियोग प्रथा के अभिप्राय मे भिन्नता है। **'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'** में शीलवती को नियोग के लिए जिस पर पुरूष के पास भेजा जाता है तो सारे शील छोड़कर उसके भीतर की नारी भडक उठती है। तो उसका उपयोग वह केवल मातृत्व की पूर्ति के लिए नहीं करती और पाती है कि " नारी की सार्थकता मातृत्व में नहीं है, महामात्य है केवल पुरूष के इस संयोग के सुख मे .....।"[7] वह दैहिक सुख को उसकी सम्पूर्णता मे भोगती है। इसके माध्यम से दैहिक सुख की अंधी दौड़ में भागते आज के व्यक्ति की भटकन ही व्यंजित है। **'हस्तिनापुर'** में अम्बिका को राज्य और वंश परम्परा को बनाए रखने के उद्देश्य से नियोग के लिए भेजा जाता है। वह नियोग प्रथा में स्त्री के स्वतंत्र इच्छा के प्रश्न खड़े करती है..... "नियोग धर्मसम्मत है और मेरा दायित्व है, यह मैं भली प्रकार समझती हूँ किन्तु जिसके लिए कामना न हो, उसे कोई स्त्री अपनी देह कैसे समर्पित कर सकती है ?"[8] इस प्रकार इन दोनों नाटकों में नियोग प्रथा के संदर्भ सर्वथा भिन्न है।

नन्दकिशोर आचार्य के नाटक **'गुलाम बादशाह'** और **'जिल्ले सुब्हानी'** नाटक ऐतिहासिक आधार पर इतिहास के महानायकों के परम्परागत चरित्र को नई दृष्टि से आँकने की दृष्टि देते है, प्रसंगान्तर से जिनके द्वारा नाटककार ने मध्ययुगीन शासकों के राजनीतिक दाँव–पेंच का भी चित्रण किया है जो एक प्रकार से आज के राजनीतिज्ञ शासकों का मुखौटा भी उतार कर रख देता है। व्यवस्था और शासन के नाम पर आज भी आदर्शों की हत्या की जा रही है। आज मानवतावादी मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। 'गुलाम बादशाह' का शासक अमानवीय कृत्यों द्वारा शासक बन जाता है, किन्तु व्यक्ति के रूप में सामाजिक जीवन में वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। वह अपनी इच्छा के बावजूद भी अंधकार में ही कैद रह जाता है, बाहर नहीं आ पाता। नाटककार ने सत्ता के चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए कुछ इस प्रकार ढालने की कोशिश की है कि नाटक का कथ्य देशकाल की सीमा को लाँघकर सार्वदेशीय और सार्वकालिक शाश्वत प्रश्नो को रूपायित करे और इसके साथ ही साथ चरित्र के जटिल मनोविज्ञान का भी साक्षात्कार कराए। स्पष्ट है कि जैसे ही चरित्र देशकाल की सीमा का अतिक्रमण पर जायेंगे, वह केवल युग विशेष के चरित्र नहीं रह जाते और अनायास ही निरंकुश और अत्याचारी शासन तंत्र के प्रतीक बन उठते हैं, जो मध्यकालीन इतिहास में भी थे और आज भी समाज रूप में विद्यमान है। इसलिए नाटककार इतिहास का सत्य होकर भी आपात स्थिति के वर्तमान से अनायास ही जुड जाता है।

'जिल्ले सुब्हानी' में भी नन्दकिशोर आचार्य ने अप्राकृतिक मानवीय संबंधो का उपयोग यहाँ मनुष्य की नियति और विवशता को चित्रित करने वाले माध्यम के रूप में किया है और यह दिखलाने की कोशिश की है कि शासन तंत्र में आज भी शोषण और अत्याचार की परम्परा पूर्ववत कायम है। सुख–सुविधा और जीवन की कीमत पर आदमी को पशु से भी बदतर बनने के लिए मजबूर किया जाता है।

'गुलाम बादशाह' की भांति **'कथा एक कंस की'** में निरंकुश शासन प्रणाली मौजूद है। नाटककार ने तत्कालीन भारतीय शासक के निरंकुश शासक पर व्यंग्य किया है वे इस संदर्भ में कहते है – "मैंने कंस के द्वारा उन व्यक्ति तंत्री स्वेच्छाचारी शासकों के निर्माण और विनाश का अन्वेषण किया है।"[9] यह द्वापर युगीन कृष्ण कथा पर आधारित नाट्य रचना है। यहाँ द्वापर के चरित्र वर्तमान में न आकर अपनी काल सीमा में रहते हुए निरंकुश और अत्याचारी शासन तंत्र के प्रतीक बन उठते है। इतिहासकालीन चरित्र वर्तमान में अविर्भूत न होकर समसामयिक समस्याओं को उजागर करते हैं।

सत्ता का संकेन्द्रण और ध्रुवीकरण एक ही परिवार में इधर देश राजनीति के संदर्भ में शासन सत्ता अपने गणतांत्रिक के बावजूद एक ही परिवार मे न केवल उत्तराधिकारी की अपेक्षा रखता है, प्रत्युत एक आपातकालीन स्थिति में उसके परिवार में संकेन्द्रित करना चाहता है। वह राजनीतिक महत्वकांक्षा के लिए किसी के मृत्यु की भी परवाह नहीं करता। वह अमानवीयता से सत्ता हथिया कर अपने ही पुत्र को शासन सत्ता मे संघटित करना चाहता है। पुत्र को भी अपने क्रूर और निरंकुश पिता का प्रतिनिधि होना स्वीकार्य नहीं है। वह कहता है – "हुकुमत मुझे इंसान नहीं रहने देगी"[10]। यही हमारी समकालीन राजनीति का एक

International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

अतीव क्रूर धरातल है। इसी प्रसंग में समकालीन प्रबुद्ध वर्ग शासन सत्ता में न तो कोई दिलचस्पी लेता है और न ही वह विरोधी भूमिका में उतरता है। पीढ़ी दर पीढ़ी हो रहे इस सत्ता स्थानान्तरण से इस वर्ग को इसी भूमिका में उतार दिया है नन्दकिशोर आचार्य की यह रचनागत भूमिका हमारी समकालीनता में अतीव प्रमाणिक सिद्ध हुई है। इस रचना में समकालीन आपातकाल तब और भी रेखाकित हो जाता है, जब इस धरातल पर अनिर्णय में संशयग्रस्त सामान्य व्यक्ति उपस्थित मिलता है।

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक **'कलंकी'** भी सत्ता की शव–साधना का अधौरी चरित्र प्रस्तुत करता है। "शासकों की बातों में आकर लोगो ने सोचना छोड़ दिया है, प्रश्न पूछना छोड़ दिया है, उनका संकटबोध समाप्त हो गया है। अपने उद्धार के लिये वे स्वंय कुछ नहीं कर रहे हैं।"[11] **'गुलाम बादशाह'** के शासक की भाँति ही वह सत्ता की सुरक्षा के लिए अयथार्थ और सीमांत संक्रमणों का आंतक फैलाता है, ताकि सामान्य जन उसी से संत्रस्त रहे और शासन सर्वथा निरंकुश नीति से शिविरों को सुदृढ बनाता जाए। इसी संदर्भ में **'गुलाम बादशाह'** का शासक सत्ता की सुरक्षा के लिए दूरी का रास्ता अपनाता है। दूसरी ओर **'कलंकी'** में शासन प्रबुद्ध युवा वर्ग की सप्रश्नता को प्रक्षालित करता है, साथ ही राष्ट्रीय चरित्र निर्माण संकल्पित संघटना को प्रतिबंधित करता है। **'गुलाम बादशाह'** में प्रबुद्ध जनता शासन तंत्र के खोखलेपन की समझ रखते हुए भी दिशा परिवर्तन नहीं करती। **'गुलाम बादशाह'** के समान बृजमोहन शाह के नाटक **'त्रिशंकु'** भी सत्ता की निरंतर अमानवीय राज्य लिप्सा का उद्घाटन करता है। अपने सत्तापीठ को सुरक्षित रखने के लिए अपनी बंदूकें युवा पीढी के कंधो पर रखी है, लेकिन **'गुलाम बादशाह'** में युवा पीढी इस सत्तापीठ को स्वीकार नहीं करती।

नन्दकिशोर आचार्य ने **'पागलघर'** नाटक में सत्ता व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। नेता, वरिष्ठ डॉक्टर, पुलिस अफसर सभी सत्ता से जुड़े हैं। पागलखाने में युवा डॉक्टर कहता है – "अजीब किस्म के पागल है सब। कोई अपने आप को नेता समझता, कोई डॉक्टर, कोई पुलिस अफसर।"[12] इन्होने शासन और सत्ता के बीच निराधार संदेह जगाए हैं। आम आदमी मध्यस्थ की भूमिका में आते ही बदल जाता है, तुरन्त ही अपने जैसे लोगों से विच्छेद में आ जाता है। सामान्य से इनका रिश्ता भय पर आधारित है। इसलिए सामान्य जनता पर आधारहीन आरोप लगाते हैं, ताकि इनकी बनाई व्यवस्था को कोई विरोध न करें। एक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छाओं तथा विचारों के साथ जीना चाहता है, लेकिन उसे जीने नहीं दिया जाता। उसे न्यायोचित पर आघात पहुँचाते हुए दबाया जाता है। इसी संदर्भ मे मणि मधुकर के नाटक **'रस गंधर्व'** में प्रजा और शासक का बिचौलिया है। पुलिस– संतरी, अफसर और राजनेता ये तीनों राजसत्ता के प्रतिष्ठान हैं। पुलिस–संतरी सामान्यजन था, परंतु सरकार सेवा में आते ही वह भी सामान्यजन से टूटकर उसी पर अपना आंतक फैलाता है, उसी को सीढ़ी बनाकर शासक सत्ता तक पहुँचना चाहता है। दोनों नाटकों मे सत्ता व्यवस्था के पुलिस और अफसरी तंत्र पर एक क्रूर व्यंग्य निक्षेप है। 'अ' पात्र 'जादूगर' की भूमिका निभाता है – "देखिये, देखिये, मेरे हाथ में यह चमत्कारी अँगूठी है, मानों रूप–रस गन्ध से भरी हुई संजीवनी बूटी है।"[11] शासन और सत्ता के बीच पल रहे जीवाणु जहाँ–जहाँ विद्यमान है या गाँठे पड़ी है उनका उत्तर व्यापक प्रसंग में उजागर हुआ है।

नन्दकिशोर आचार्य कृत नाटक **'किमिदम यक्षम'** एक व्यक्ति के भीतर की विसंगति चेतना संत्रास, तनाव और बेतुकेपन की कई स्तरों पर अभिव्यक्ति हुई है। मूर्ति, सर्प, धाय, गूँगी–बहरी लड़की, खण्डहर आदि कई ऐसे गंभीर प्रतीक हैं जो साधारण दर्शकों और पाठकों के समझ से परे हैं। इसी प्रकार बृजमोहन शाह के नाटक **'शह ये मात'** में भी ऐसे ही गंभीर प्रतीक जैसे सूखे पेड, जीवित मुर्गा, शतरंज, गूँगी लडकी आदि हैं। यह नाटक गंभीर वातावरण की सृष्टि करता है, तो **'किमिदम यक्षम'** रहस्यों की सृष्टि करता है, जो अपने आप में तनाव है। **'किमिदम यक्षम'** का प्रोफेसर अपने इतिहास को जानने की इच्छा लिए हुए अपने विगत जीवन की विफलताओं का तीखा अनुभ्सव करने लगता है। वे सभी अतीत की असफलताओं और भूलों के वर्तमान में अनिश्चित के भविष्य को जी रहे हैं। अपनी बीती असफलताओं के संत्रास में अपने आप को समझने–समझाने के वर्तमान में भविष्य के प्रति अनिश्चित भाव से सदा ही विचित्र, बेतुका और नीरस भाव से जीवन जीने के लिए विवश है। चाहे वह जीवन जीना व्यक्तिगत रहा हो। चाहे दम्पतिगत, चाहे वर्गगत हो। **'किमिदम यक्षम'** तथा 'शह ये मात' ऐसे ही व्यक्तियों की जीवन–इच्छा आकांक्षा–असफलता के तथ्यों और कल्पनाओं का मिश्रित रूप है। **'किमिदम यक्षम'** नाटक फैंटेसी यर्थाथ अतीत और वर्तमान

International Journal of Engineering, Management and Humanities (IJEMH)
Volume 4, Issue 1, pp: 349-355 www.ijemh.com

का मिश्रित रूप है, जिनक अभिव्यक्ति प्रोफेसर गूँगी–बहरी लड़की, धाय, अंधी–गूँगी बहरी लड़की तथा नवागन्तुक के द्वारा की गई है। प्रोफेसर अतीत और वर्तमान है, गूँगी–बहरी लडकी तथा अंधी लडकी वर्तमान है, नवागन्तुक का व्यक्तित्व भविष्य की ओर संकेत करता है। धाय अतीत, वर्तमान और भविष्य भी है जो अतीत की घटनाओं की साक्षी भी है, द्रष्टा और भोक्ता भी है, क्योंकि दोनों लडकियों की परवरिश भी वही करती है। "जो देखता है वह भी भोगता है"[14] अर्थात नाटक देखते–देखते दर्शक भी धाय की तरह भोक्ता है। **'शह ये मात'** एक दम्पति की कहानी है। जिनकी अभिव्यक्ति गूँगी–बहरी लडकी थके हारे कैप्टेन, भागकर लौट आई पत्नी, नवागन्तुक किराएदार के द्वारा की की गई है। कैप्टेन अतीत है, स्त्री गूँगी–बहरी लड़की, किराएदार लडका–वर्तमान है। नवागन्तुक का भ्रामक व्यक्तित्व–भविष्य। सभी पात्रों के जीवन की जीवन्त अभिव्यक्ति वह सूखा हुआ पेड है जो मंच के एक कोने में मूकदर्शक बना हुआ खडा रहता है। अतः **'शह ये मात'** में सूखा पेड और **'किमिदम यक्षम'** में धाय समय के प्रतीक है। इसलिए हम सभी समय के मूक दर्शक और भोक्ता ही तो हैं।

नन्दकिशोर आचार्य के **'जूते'** नाटक में नये–पुराने जूते व्यक्ति के सौभाग्य और दुर्भाग्य को मूर्त अभिव्यक्ति देते हैं। खलीफा अबू कासिम से कहता है – "ये जूते तुम्हारी कारतूत है ये जो कुछ है तुम्हारे बनाये हैं। तुम्हारी करतूत दूसरों को नहीं फॅसाती, खुद तुम्हे भी अपने जाल में लेती है।"[15] यहाँ मानव दुर्भाग्य से मुक्ति का प्रयास करता है। जूते के माध्यम से ही नाटक का द्वन्द्व उभरता है। इसी प्रकार मणि मधुकर के नाटक **'दुलारी बाई'** के पुश्तैनी जूते फटे–पुराने और अनुपयोगी पारम्परिक विचार और सिद्धान्त है जिनमें समयानुकूल परिवर्तन होना चाहिए था। दुलारी बाई कुजूस प्रवृति की है वह कहती है– " हे नन्द के लाला ब्रज गोपाल मैं भी हर वक्त तेरा नाम जपती हूँ मुझे भी एक साड़ी दे दे।"[14] मानवीय लालसां का विद्रुपपूर्ण चित्र है। इन दोनों नाटकों में नाटक के कथ्य को अति सूक्ष्म धरातल पर यही जूता अभिव्यक्ति देता चलता है। ये नाटक कुछ न कुछ शाश्वत सत्य को प्रस्तुत करते हैं, चाहे व्यक्ति द्वारा अँधेरे से प्रकाश में आने की कोशिश को चाहे मुक्ति के लिए संघर्ष को पृथक–पृथक दृष्टि से देखने की कोशिश की गई है। दोनों की कथा वस्तु भिन्न है और दोनों ही नाटकों में जूते का अर्थ भिन्न है मणि मधुकर का जूता पौराणिक संस्कारों का प्रतीक है और नन्दकिशोर आचार्य का जूता कर्म का प्रतीक है।

निष्कर्ष – यह कहा जा सकता है कि नन्दकिशोर आचार्य अपने अन्य समकालीन नाटककारों के समान जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करने मे सफल रहे हैं। नाटक एक महत्वपूर्ण उपस्थिति है, उसे कथानक चरित्र–चित्रण वातावरण आदि की स्थूल शैल्पिक संज्ञाओं से नहीं जकडा जा सकता। समकालीन नाटकों में नये दृष्टिकोण एवं नई भावभूमियों के सम्प्रेष्ण के लिए नए शिल्प रूपों की स्वीकृति दी गई है। आचार्य जी के नाटक में निहित सह सम्प्रेषणीयता का गुण तथा यथार्थ को पकडने की वैसी पैनी तटस्थ भावुकतामुक्त और बौद्धिक दृष्टि भी समकालीन नाटककारों के समान अनूठापन निर्धारित करता है। विशेष रूप से अनेक नाटकों में यथार्थ के समानान्तर व्यग्य की प्रतिष्ठा भी उन्हें एक दूसरे से अलग एवं विशिष्ट बनाती है। जीवन के किसी न किसी विचार या भाव तथा सत्य से प्रेरित नाटककार ने नाटक की सृष्टि की है। इसलिए यह युगीन परिस्थितियों के साथ–साथ परिवर्तित होते जाते हैं, कभी धुँधलाते नहीं। ये नाटक प्राचीन होते हुए भी चिर नवीन हैं।

संदर्भ सूची

1. नन्दकिशोर आचार्य – देहान्तर, पृ॰ 45, 1987, वाग्देवी, प्रकाशन, बीकानेर
2. रामधारी सिंह 'दिनकर' – उर्वशी, पृ॰ 12, 2008, तृतीय संस्करण, लिपि प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल – सगुन पंछी, पृ॰ 15, 1977, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
4. सुशील कुमार सिंह – चार यारों की यार, पृ॰ 11, 2009, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5. मोहन राकेश – आधे–अधूरे, पृ॰ 76, 1969, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
6. गिरीश कर्नाड – हयवदन, अनुवादक – बी. वी. कारंत, पृ॰ 79, 1975, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
7. डॉ सुषम बेदी – हिन्दी नाट्य : प्रयोग के सन्दर्भ में, पृ॰ 192, 1984, पराग प्रकाशन, दिल्ली

8. नन्दकिशोर आचार्य – रंगत्रयी, हस्तिनापुर, पृ॰ 89, 1996, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
9. दया पकाश सिन्हा – कथा एक कंस की, पृ॰ 101, 1976, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
10. नन्दकिशोर आचार्य – रंगत्रयी, गुलाम बादशाह, पृ॰ 55, 1996, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
11. डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल – कलंकी, पृ॰ 126, 1979, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
12. नन्दकिशोर आचार्य – नटतृतीया, पागलघर, पृ॰67, 2001, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
13. मणि मधुकर – रस गंधर्व, पृ॰ 16, 1978, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
14. नन्दकिशोर आचार्य – नटतृतीया, किमिदम यक्षम, पृ॰ 12, 2001,
15. नन्दकिशोर आचार्य – रंगत्रयी, जूते, पृ॰ 159, 1996
16. मणि मधुकर – दुलारी बाई, पृ॰ 16, 1985, लिपि प्रकाशन